

सामाजिक परिवर्तन के रूप में राजनीतिक विकास

डॉ० ज्ञानचन्द्र*

सभ्यता के आरम्भ से लेकर कुछ समय पूर्व तक राजनीतिक चिन्तकों के समक्ष मूल प्रश्न यह था कि अच्छा समाज क्या है और उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है? राजनीतिक विकास के दृष्टिकोण से अब इस प्रश्न को इस रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है कि स्थायी समाज क्या है और अभिजन वर्ग के नेतृत्व में राजनीतिक व्यवस्था की मजबूती के साथ स्थापना करने का सबसे अच्छा साधन क्या हो सकता है? यह सर्वमान्य सच्चाई है कि सामाजिक व्यवस्था की किसी भी उप-व्यवस्था, चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक कुछ भी हो, में होने वाले परिवर्तनों का प्रत्यक्ष प्रभाव दूसरी उपव्यवस्था में भी पड़ता है इसलिए समाज में होने वाले परिवर्तन राजनीतिक विकास को भी प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए यदि राजनीतिक व्यवस्था का आधार केवल बल प्रयोग पर आधारित हो तथा एकीकरण का अभाव हो तो इससे सम्पूर्ण समाज का विघटन हो जाएगा। इसलिए यह आवश्यक है कि देश में राजनीतिक व्यवस्था का विकास इस प्रकार हो कि उसकी परिणति समाज का सर्वांगीण विकास हो तथा समाज की सांस्कृतिक, आर्थिक और सहभागी उपव्यवस्थाओं का विकास भी साथ-साथ होना चाहिए। राजनीतिक विकास के सन्दर्भ में विचार करने पर विश्व की सामाजिक व्यवस्थाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है -

1. आदिम एवं पिछड़ी सामाजिक व्यवस्थाएँ— इस वर्ग में विश्व की अत्यधिक पिछड़ी सामाजिक व्यवस्थाएँ सम्मिलित हैं, जिनमें परम्परागत रीति-रिवाजों और धार्मिक कर्मकाण्डों को मान्यता प्रदान की जाती है। सामाजिक लामबन्दी, समाजीकरण और सहभागिता की दिशा में कोई प्रयास नहीं किया जाता। सरकार की संस्थाओं में निर्णय प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार एक विशेष परम्परा के वंश के लोगों या कुछ समुदायों तक ही सीमित रहता है। राज्य के उच्च पदों पर केवल एक ही दल तथा वंश के लोगों का प्रभुत्व बना रहता है।

2. विकासशील सामाजिक व्यवस्थाएँ— इस प्रकार की व्यवस्थाओं में परम्परागत और आधुनिक तत्वों का जटिल मिश्रण होता है। इनका आधार परम्परागत होता

है और ये औद्योगीकरण व नगरीकरण के दबाव के अधीन रहते हैं। इनमें आधुनिकीकरण की गति तो तीव्र रहती है परन्तु परम्परा का कारक भी मौजूद रहता है। यह व्यवस्था विश्व के उन भागों में अधिक स्पष्ट रूप से देखी जाती है जहाँ के लोग यूरोपीय शक्तियों के औपनिवेशिक आधिपत्य के अधीन रहे हैं।

3. विकसित सामाजिक व्यवस्थाएँ— इस सामाजिक व्यवस्था में समाज सम्पन्न तथा उच्च शिक्षा प्राप्त है तथा देश औद्योगीक तथा नगरीक है। राज्य की प्रत्येक संस्था का आधार लोकतान्त्रिक होता है। लोगों की सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में सम्बद्धता की भावना होती है। इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाओं में लोग निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार की व्यवस्थाओं में 'असैनिक शासन है और जो सार्वजनिक स्वतन्त्रताओं की परिधि में प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं द्वारा चलते हैं।

राजनीतिक व्यवस्थाएँ और सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक प्रवेश की प्रतिक्रियाओं पर एक-दूसरे से मिलते और एक-दूसरे को काटते हैं। ये प्रक्रियाएँ सामाजिक परिवर्तन की प्रतिबिम्बक हैं। ये मूल्यों, आकांक्षाओं, अवसरों के प्रत्यक्ष ज्ञानों तथा वास्तविक संरचनाओं व भूमिकाओं में परिवर्तनों को प्रतिबिम्बित कर सकती हैं। साथ ही ये हैसियत और प्रतिष्ठा के वितरण में अपने प्रभाव का और कार्यान्वित किए जाने वाले कार्यों के लिए उपयुक्त व्यक्तियों के चयन में अपनी कुशलता का उपयोग करती है। अपनी नमनशीलता से वे व्यवस्था की स्थिरता और विकास में योगदान देती है अपनी अनम्यता से वे तनाव भंग किए जाने वाले कारणों का सृजन कर सकती है। समाज विज्ञानियों ने राजनीतिक विकास को सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं औद्योगीकरण, नगरीकरण, व्यापारीकरण, साक्षरता प्रसार आदि के दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न किया है। इनका मानना है कि अध्ययन का अन्तिम उद्देश्य ऐसी योजना की तैयारी करना होना चाहिए, जिससे सामाजिक परिवर्तन के व्यापक विश्लेषण में ये सभी कारक शामिल हो। विकास की अवस्थाएँ सामाजिक विज्ञानों में अर्थशास्त्र की देन है जिसका प्रयोग राजनीतिक विकास के सन्दर्भ में करने का भी प्रयास किया गया। 'रस्टोव ने यह सुझाव दिया कि सम्भवतः राजनीतिक विकास की भी आर्थिक विकास की तरह अवस्थाएँ हों।' जाग्वाराइब का राजनीतिक विकास की अवस्थाओं के सम्बन्ध में यह मत है कि 'मैं इस बात पर जोर देकर कहता हूँ कि व्यक्त या अव्यक्त ढंग से वे सब विचारक जो राजनीतिक विकास को प्रक्रिया के रूप में लेते हैं, राजनीतिक विकास को ऐतिहासिकता और विश्लेषणात्मकता की दृष्टि से अभिज्ञाननीय निश्चित स्तरों के क्रम में प्रस्तुत करते हैं।' राजनीतिक विकास राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राष्ट्र के मानवीय और भौतिक श्रोतों का उपयोग करते हुए सरकार की कार्यकुशलता

*पी-एच० डी० राजनीति विज्ञान विभाग बी० एन० एम० यू०, मधेपुरा

और दक्षता बढ़ाने का नाम है। केनेथ आरगेन्सकी ने राजनीतिक विकास की चार अवस्थाओं को स्वीकार किया है

1. आदिम एकीकरण की अवस्था, इस अवस्था में सरकारें अपनी जनसंख्या पर प्रभावशाली राजनीतिक और प्रशासनिक नियन्त्रण स्थापित करती हैं। इसके बिना औद्योगीकरण के द्वारा विकास सम्भव नहीं होता।

2. औद्योगीकरण की अवस्था इस अवस्था में समाज में नये वर्गों का उदय होता है। जनता में जन सहभागिता बढ़ती है तथा राष्ट्रीय एकीकरण में वृद्धि होती है। इस विकास की अवस्थाओं के तीन वैकल्पिक सम्भावनाओं वाले प्रतिमान हैं—(1) बुर्जुआ या मध्यवर्गीय मॉडल, जिसमें पूँजी संचय के साधन निजी होते हैं तथा बुर्जुआ वर्ग शासन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेते हैं। (2) स्टालिनी मॉडल, जिसमें शक्तिपूर्वक या क्रान्तिकारी साधनों के द्वारा पुराने अभिजनों को हटाकर एक नए नौकरशाही वर्ग का उदय होता है तथा पूँजी के साधन इसी वर्ग के हाथ में होते हैं। (3) समन्वयी मॉडल या फासीवादी मॉडल, जिसमें पुराने व नये अभिजनों का समन्वय रहता है तथा मध्यवर्गीय कृषकों के हितों की रक्षा होती है तथा पूँजी का संचय धीमी गति से होता है।

3. लोक कल्याण की अवस्था, इस अवस्था में जनता को पूँजी के शोषण से मुक्त रखा जाता है तथा पूँजी के साधनों का जनता में पुनः वितरण करके जन सहभागिता को सम्भव बनाया जाता है।

4. बहुलता की अवस्था, यह समृद्धि की राजनीति का स्तर है, जो वैज्ञानिक प्रविधियों के विकास और अत्यधिक परिष्कृत उपकरणों से अत्यधिक उत्पादकता का स्तर है। इस प्रकार के समाज में आर्थिक की बजाए राजनीतिक व सांस्कृतिक हितों पर ज्यादा बल दिया जाता है।

उपरोक्त अवस्थाओं के सन्दर्भ में आरगेन्सकी की मान्यता है कि राजनीतिक विकास का एक स्तर पूर्ण रूप से प्राप्त होने के बाद ही उसके आगे के स्तर पर जाना सम्भव है, अर्थात् यदि पहले स्तर को पूर्णतया प्राप्त नहीं किया जाता, तो उससे आगे के स्तर को सफलतापूर्वक प्राप्त करना कठिन है। दो स्तरों में सीमित अशुद्धादन सम्भव है क्योंकि एक स्तर से दूसरे स्तर के बीच निश्चित सीमा रेखा खींच सकना सम्भव नहीं है।

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था से सम्बन्धित षट्कोण के माध्यम से राजनीतिक विकास के चार स्तरों का उल्लेख किया है :—

1. **राज्य निर्माण का स्तर**— राजनीतिक विकास के इस स्तर पर एक केन्द्रीय सत्ता का निर्माण होता है तथा विभिन्न समूह इस केन्द्रीय सत्ता के अधिकार क्षेत्र में एकीकृत होते हैं। यह एक प्रभावकारी और केन्द्रीय नौकरशाही की स्थापना से

भी सम्बन्धित है, जो व्यवस्था की क्षमता में वृद्धि करती है तथा इसके विकास में सहायक भूमिका का निर्वाह करती है।

2. **राष्ट्र निर्माण का स्तर**— यह राजनीतिक विकास के सांस्कृतिक पक्ष से सम्बन्धित है जिसमें लोगों की निष्ठा एवं प्रतिबद्धताएँ छोटे जनजातीय समूह तथा गाँवों से एक केन्द्रीय राजनीतिक व्यवस्था की ओर हो जाती है।

3. **सहभागिता का स्तर**— इस स्तर पर लोगों की मांग विभिन्न समूहों और समाजों से राजनीतिक व्यवस्था तक पहुँचने लगती है। इस प्रक्रिया में समूहों तथा समाजों के संस्तरों को अभिवृद्ध करना और व्यापक बनाना सम्मिलित है।

4. **वितरण का स्तर**— इस स्तर पर सामाजिक जीवन के लाभों के लिए संसाधनों के प्रयोग की विधियों द्वारा समाज के सभी वर्गों तक इन लाभों को पहुँचाना सम्मिलित है।

जॉन कॉस्टस्की ने परम्परागत एवं आधुनिक दोनों समाजों के राजनीतिक विकास को पाँच वर्गों में विभाजित किया है :—

(1) परम्परागत कुलीनतन्त्रात्मक अधिकारवादी अवस्था, (2) राष्ट्रीय बुद्धिजीवियों के प्रभुत्व की संक्रान्तिकालीन अवस्था, (3) कुलीनतन्त्रों की सर्वाधिकारवादी अवस्था, (4) बुद्धिजीवियों की सर्वाधिकारवादी अवस्था तथा (5) प्रजातन्त्रात्मक अवस्था। इन अवस्थाओं के कई प्रकार, रूप, उपरूप तथा मिश्रण हो सकते हैं। जाग्वाराइब ने राजनीतिक विकास के दो पक्ष बताये हैं—(1) यर्थाथवादी (2) प्रकार्यात्मक पक्ष। यर्थाथवादी पक्ष के अन्तर्गत तीन स्तर हैं: (1) समाजीकरण, जिसमें समाज पर राजनीतिक नियन्त्रण की प्रक्रिया आती है जिसमें राजनीतिक एकीकरण, अतिरिक्त समाजीय विस्तार तथा अन्तर समाजीय विविधीकरण होता है। (2) मशीनीकरण, जिसमें औद्योगीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय विस्तार तथा राष्ट्रीय विविधीकरण होता है। (3) सामाजिक संगठन, जिसमें सामान्य प्रकार का संगठन, अन्तर्राष्ट्रीयकरण तथा पुनर्मानवीकरण या विमानवीकरण होता है।

प्रकार्यवादी पक्ष के अन्तर्गत प्ररूप निर्माण, राज्य निर्माण, राष्ट्र निर्माण तथा मतैक्य निर्माण चार स्तर हैं। उपरोक्त सम्पूर्ण स्तरों का महत्व सम्पूर्ण राजव्यवस्था की दृष्टि से होता है।

राजनीतिक विकास की विशेषताओं पर राजनीतिशास्त्री एकमत नहीं हैं। विभिन्न विचारकों ने भिन्न-भिन्न लक्षणों का वर्णन करके अलग-अलग विशेषताएँ बताई हैं। ल्युशियन पाई ने राजनीतिक विकास की तीन विशेषताएँ समानता, क्षमता और विभिन्नीकरण का वर्णन किया है जिसमें समानता का आशय व्यक्तियों में समानता के प्रति सामान्य भावना का उत्पन्न होना, क्षमता का आशय राजनीतिक व्यवस्था की प्रभावकारिता तथा विभिन्नीकरण, राजनीतिक संरचनाओं के विशेषीकरण

तथा कार्य विभाजन से सम्बन्धित है। पाई ने समानता, क्षमता और विभिन्नीकरण को राजनीतिक विकास का विकास संलक्षण कहा है। आमण्ड और पावेल ने राजनीतिक विकास की विशेषताएँ (1) भूमिका विभेदीकरण (2) उपव्यवस्था स्वायत्तता और (3) लौकिकीकरण बतायी। भूमिका विभेदीकरण के अन्तर्गत न केवल संरचनात्मक विभिन्नीकरण हो बल्कि यथार्थ में भूमिकाओं का विभिन्नीकरण भी होता है। भूमिका विभेदीकरण तब तक सम्भव नहीं है जब तक राजनीतिक व्यवस्था की उप-व्यवस्थाओं को स्वायत्तता प्राप्त न हो। इनकी स्वायत्तता से राजनीतिक व्यवस्था में शक्ति का विकेन्द्रीकरण होता है। लौकिकीकरण का सम्बन्ध संसृति से है, जिसमें लोग परम्परागतता से हटकर धर्मनिरपेक्षता की ओर उन्मुख होते हैं। इसका सम्बन्ध लोगों की अभिवृत्तियों में होने वाले परिवर्तनों से है। राजनीतिक विकास में उपरोक्त तीनों विशेषताओं का अनिवार्य रूप से एक साथ पाया जाना आवश्यक होता है।

'आइजेन्स्टाड द्वारा राजनीतिक विकास हेतु निर्धारित शर्तों की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है :-

1. संचार साधनों का पर्याप्त पुर्नगठन इस उददेश्य से कि अभिजनों के लिए विकासात्मक प्रयत्नों में जनसाधारण को नियोजित करना सम्भव हो।
2. देश में शिक्षा का पर्याप्त विकास, प्रारम्भ में प्राथमिक शिक्षा का विकास, जिससे जनसाधारण में चेतना फैले और बाद में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार, जिससे समस्त समाज शिक्षा के एक अच्छे स्तर को प्राप्त कर सके।
3. नये विकासात्मक कार्यों के लिए समाज के निम्न और साधारण क्षेत्रों से पर्याप्त संख्या में जनसाधारण का नियोजन।
4. अभिजन वर्ग की त्यात्मकता का अनवरत रूप से निर्वाह, जिससे उनके द्वारा समाज को एक निश्चित दिशा दी जा सके।
5. अभिजनों के पास विकास की एक ढ़ योजना, इस अर्थ में कि वे न केवल अपनी योजनाओं का स्पष्टता के साथ निरूपण कर सकें बल्कि उन्हें प्रभावशाली ढंग से कार्यान्वित भी कर सकें।

इसके अतिरिक्त राजनीतिक विकास की कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं जो किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक ही नहीं अपित लक्ष्य भी हैं। ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

1. राष्ट्रीय एकीकरण, जिसमें लोगों की निष्ठा अपने समुदाय के प्रति न होकर राष्ट्र के प्रति हो तथा राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हो।
2. निगर्ण निर्माण में सहभागिता, जिसके माध्यम से राजनीतिक व्यवस्था लोगों के अनुकूल नियमों का निर्माण कर सके और उनके व्यक्तित्व का विकास सम्भव हो।

3. मतदान में भागीदारी, जिसके द्वारा लोगों को व्यवस्था में नीतियों के क्रियान्वयन हेतु अपने प्रतिनिधियों को भेजने के अवसर प्राप्त हो सकें।
4. स्वायत्त दबाव समूहों का होना, जो नीति निर्माताओं को अपने अनुकूल नीति निर्माण करने हेतु बाध्य कर सकें।
5. जनसंचार साधनों का विकास, जिसके माध्यम से जनता की मांगे शासन तक तथा शासन से निर्गत जनता तक आसानी से पहुँच सकें।
6. राजनीतिक और प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण, जिसके द्वारा लोगों की शासन के प्रत्येक अंगों तक पहुँच आसानी से हो।
7. स्थानीय सरकारों का स्वायत्त होना, जिससे वे अपने निर्णयों को लेने तथा उनके क्रियान्वयन के लिए स्वतन्त्र हों।
8. सरकार व नौकरशाही वर्ग की देखरेख के लिए प्रभावकारी निगरानी संस्थाएँ होना, जिसके द्वारा शासन व्यवस्था में पारदर्शिता बनी रहे तथा भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण रखा जा सके।
9. स्थायी दलीय प्रणाली का होना, जो लोकतान्त्रिक मूल्यों के अनुरूप हो।
10. स्वस्थ राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का होना तथा राष्ट्रीय मुद्दों पर एकमत राजनीति का उपस्थित होना।
11. शासन का विरोध प्रदर्शनों के प्रति सहिष्णुता का होना न कि उनका बर्बरतापूर्वक दमन करना।
12. राजनीतिक अभिजनों का सामाजिक आधार होना. वे किसी वर्ग या समुदाय विशेष तक सीमित न हों।
13. लोक प्रशासन में खुलापन होना ताकि आम जनता की उस तक पहुँच आसान हो।
14. विधायकों द्वारा संवैधानिक तौर-तरीकों से कार्य करना।
15. प्रेस की स्वतन्त्रता ताकि जनभावनाओं को आसानी से व्यक्त किया जा सके।
16. शिक्षा का प्रसार होना।
17. स्वतन्त्र न्यायपालिका का होना तथा समाज के प्रत्येक वर्ग को न्याय प्राप्त होना।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. बारान, स्टेनले जे. : इन्ट्रोडक्शन टू मास कम्युनिकेशन : मीडिया लिटरेसी एण्ड कल्चर मेफील्ड पब्लिशिंग कम्पनी, कैलिफोर्निया, 1998, पृ0-37।
2. पारण, जवरीमल्ल : जनसंचार के सामाजिक सन्दर्भ, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 2001, पृ0-18।
3. शर्मा, सुरेश चन्द्र : मीडिया कम्युनिकेशन एण्ड डेवलेपमेंट, जयपुर, रावत पब्लिकेशन, 1987, पृ0-36।
4. पारख, जवरीमल्ल : संचार माध्यमों का वैचारिक परिप्रेक्ष्य, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 2000, पृ0-196।

